॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

निरालम्ब उपनिषद

विषय सूची

॥अथ निरालम्बोपनिषत् ॥ 3
निरालम्ब उपनिषद..... 4
शान्तिपाठ 17

॥ श्री हरि ॥

॥अथ निरालम्बोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

यत्रालम्बालम्बिभावो विद्यते न कदाचन ।
ज्ञविज्ञसम्यग्ज्ञालम्बं निरालम्बं हरिं भजे ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ निरालम्बोपनिषत् ॥

निरालम्ब उपनिषद

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्द मूर्तये ।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥
निरालम्बं समाश्रित्य सालम्बं विजहाति यः ।
स संन्यासी च योगी च कैवल्यं पदमश्नुते । ॥१॥

उस कल्याणकारी (शिव) गुरु, सत्-चित् और आनन्द की मूर्ति को नमस्कार है। उस निष्प्रपञ्च, शान्त, आलम्ब (आश्रय) रहित, तेज:स्वरूप परमात्मा को नमन है। जो निरालम्ब (परमात्म तत्त्व) का आश्रय ग्रहण करके (सांसारिक) आलम्बन का परित्याग कर देता है, वह योगी और संन्यासी है, वही कैवल्य (मोक्ष) पद प्राप्त करता है॥१॥

एषमज्ञानजन्तूनां समस्तारिष्टशान्तये ।
यद्यद्बोद्धव्यमखिलं तदाशङ्क्य ब्रवीम्यहम् ॥ ॥२॥

इस संसार के अज्ञानी जीवों के सभी अरिष्टों (कष्टों) की शान्ति के निमित्त जो-जो ज्ञान आवश्यक है, उसकी आशंका करके (उसके उत्तर के रूप में) मैं यहाँ कहता हूँ (पूछता हूँ) ॥२॥

किं ब्रह्म । क ईश्वरः । को जीवः । का प्रकृतिः । कः परमात्मा । को ब्रह्मा । को विष्णुः । को रुद्रः ।क इन्द्रः । कः शमनः । कः सूर्यः । कश्चन्द्रः । के सुराः । के असुराः । के पिशाचाः । के मनुष्याः । काः स्त्रियः । के पश्वादयः । किं स्थावरम् । ब्राह्मणादयः । का जातिः । किं कर्म । किमकर्म ।किं ज्ञानम् । किमज्ञानम् । किं सुखम् । किं दुःखम् । कः स्वर्गः । को नरकः । को बन्धः । को मोक्षः । क उपास्यः । कः शिष्यः । को विद्वान् । को मूढः । किमासुरम् । किं तपः । किं परमं पदम् । किं ग्राह्यम् । किमग्राह्यम् । कः संन्यासीत्याहशङ्क्याह ब्रह्मेति । ॥३॥

ब्रह्म क्या है ? ईश्वर कौन है ? जीव कौन है ? प्रकृति क्या है ? परमात्मा कौन है ? ब्रह्मा कौन है ? विष्णु कौन है ? रुद्र कौन है ? इन्द्र कौन है ? यम कौन है ? सूर्य कौन है ? चन्द्र कौन है ? देवता कौन हैं ? असुर कौन हैं ? पिशाच कौन हैं ? मनुष्य क्या हैं ? स्त्रियाँ क्या हैं ? पशु आदि क्या हैं ? स्थावर (जड़) क्या है ? ब्राह्मण आदि क्या हैं ? जाति क्या है ? कर्म क्या है ? अकर्म क्या है ? ज्ञान और अज्ञान क्या हैं ? सुख-दुःख क्या हैं ? स्वर्ग-नरक क्या हैं ? बंधन और मुक्ति क्या हैं ? उपासना करने योग्य कौन है ? शिष्य कौन है ? विद्वान् कौन है ? मूर्ख कौन है ? असुरत्व क्या है ? तप क्या है ? परमपद किसे कहते हैं ? ग्रहणीय और अग्रहणीय क्या हैं ? संन्यासी कौन है ? इस प्रकार शंका व्यक्त करके उन्होंने ब्रह्म आदि का स्वरूप विवेचित किया॥३॥

स होवाच महदहङ्कारपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशत्वेन
बृहद्रूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूपतया
भासमानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तं
तत्सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्यनन्तं
शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादि-
वाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ॥ ईश्वर इति च ॥॥४॥

उन्होंने कहा कि महत् तत्त्व, अहं, पृथिवी, आप, तेजस्, वायु और आकाश रूप बृहद् ब्रह्माण्ड कोश वाला, कर्म और ज्ञान के अर्थ से प्रतिभासित होने वाला, अद्वितीय, सम्पूर्ण (नाम रूप आदि) उपाधियों से रहित, सर्व शक्तिसम्पन्न, आद्यन्तहीन, शुद्ध, शिव, शान्त, निर्गुण और अनिर्वचनीय चैतन्य स्वरूप परब्रह्म कहलाता है। अब ईश्वर के स्वरूप का कथन करते हैं। यही ब्रह्म जब अपनी प्रकृति (शक्ति) के सहारे लोकों का सृजन करता है और अन्तर्यामी स्वरूप से (उनमें) प्रविष्ट होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा बुद्धि और इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, तब उसे ईश्वर कहते हैं॥४॥

ब्रह्मैव स्वशक्तिं प्रकृत्यभिधेयामाश्रित्य लोकान्सृष्ट्वा
प्रविश्यान्तर्यामित्वेन ब्रह्मादीनां बुद्धीन्द्रियनियन्तृत्वादीश्वरः ॥ जीव
इति च ब्रह्मविष्ण्वीशानेन्द्रादीनां नामरूपद्वारा
स्थूलोऽहमिति मिथ्याध्यासवशाज्जीवः ।सोऽहमेकोऽपि
देहारम्भकभेदवशाद्बहुजीवः ।॥५॥

जब इस चैतन्य स्वरूप ईश्वर को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्रादि नामों और रूपों के द्वारा देह का मिथ्याभिमान हो जाता है कि मैं

स्थूल हूँ, तब उसे जीव कहते हैं। यह चैतन्य 'सोऽहं' स्वरूप में एक होने पर भी शरीरों की भिन्नता के कारण 'जीव' अनेकविध बन जाता है॥५॥

प्रकृतिरिति च ब्रह्मणः सकाशान्नानाविचित्रजगन्निर्माण-सामार्थ्यबुद्धिरूपा ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः । ॥६॥

प्रकृति उसे कहते हैं, जो ब्रह्म के सान्निध्य से चित्र-विचित्र संसार को रचने की शक्ति वाली तथा। ब्रह्म की बुद्धिरूपा शक्ति वाली है॥६॥

परमात्मेति च देहादेः परतरत्वद्ब्राह्मैव परमात्मा ॥ ७॥

देहादि से परे रहने के कारण ब्रह्म को ही परमात्मा कहते हैं॥७॥

स ब्रह्मा स विष्णुः स इन्द्रः स शमनः स सूर्यः स चन्द्रस्ते सुरास्ते असुरास्ते पिशाचास्ते मनुष्यास्ताः स्त्रियस्ते पश्वादयस्तत्स्थावरं ते ब्राह्मणादयः । ॥८॥

यही परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, सूर्य और चन्द्र आदि देवता के रूप में; यही असुर, पिशाच, नर-नारी और पशु आदि के रूप में प्रकट होता है; यही जड़-पदार्थ और ब्राह्मण आदि भी है॥८॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । जातिरिति च । ॥९॥

यह समस्त विश्व ही ब्रह्म है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है॥९॥

न चर्मणो न रक्तस्य न मांसस्य न चास्थिनः ।
न जातिरात्मनो जातिर्व्यवहारप्रकल्पिता । ॥१०॥

जाति (शरीर के) चर्म, रक्त, मांस, अस्थियों और आत्मा की नहीं होती। उसकी (मानव, पशु-पक्षी या ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति की) प्रकल्पना तो केवल व्यवहार के निमित्त की गई है ॥१०॥

कर्मेति च क्रियमाणेन्द्रियैः कर्मण्यहं करोमीत्यध्यात्मनिष्ठतया
कृतं कर्मैव कर्म । अकर्मेति च कर्तृत्वभोक्तृत्वा-
द्यहङ्कारतया बन्धरूपं जन्मादिकारणं
नित्यनैमित्तिकयागव्रततपोदानादिषु फलाभिसन्धानं
यत्तदकर्म । ॥११-१२॥

इन्द्रियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को कर्म कहते हैं। जिस क्रिया को 'मैं करता हूँ इस भावपूर्वक (अध्यात्म निष्ठा से) किया जाता है, वही कर्म है। कर्त्तापन और भोक्तापन के अहंकार के द्वारा फल की इच्छा से किये गये बन्धन स्वरूप नित्य-नैमित्तिक यज्ञ, व्रत, तप, दान आदि कर्म अकर्म' कहलाते हैं ॥११-१२॥

ज्ञानमिति च देहेन्द्रियनिग्रहसद्गुरूपासन-
श्रवणमननिदिध्यासनैर्यद्यदृग्दृश्यस्वरूपं

सर्वान्तरस्थं सर्वसमं घटपटादिपदार्थ-
मिवाविकारं विकारेषु चैतन्यं विना किञ्चिन्नास्तीति
साक्षात्कारानुभवो ज्ञानम् । ॥१३॥

सृष्टि की सभी बदलने वाली वस्तुओं में एक ही अपरिवर्तनशील चैतन्य तत्त्व विद्यमान है, अन्य कुछ भी नहीं है, द्रष्टा और दृश्य जो कुछ भी है, सब कुछ चैतन्य तत्त्व ही है। सबके अन्दर यह चैतन्य तत्त्व ही विद्यमान रहने पर भी ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह घट-वस्त्रादि रूप में ही परिवर्तित हो गया है। इसी साक्षात्कार की अनुभूति को ज्ञान कहते हैं। यह अनुभूति शरीर और इन्द्रिय आदि पर नियंत्रण रखने से और सद्गुरु की उपासना, उनके उपदेशों के श्रवण, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करने से होती है॥१३॥

अज्ञानमिति च रज्जौ सर्पभ्रान्तिरिवाद्वितीये सर्वानुस्यूते सर्वमये
ब्रह्मणि देवतिर्यङ्नरस्थावरस्त्रीपुरुषवर्णाश्रम-
बन्धमोक्षोपाधिनानात्मभेदकल्पित ज्ञानमज्ञानम् ।॥१४॥

जिस प्रकार रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार सब में विद्यमान ब्रह्म और देव, पशु-पक्षी, मनुष्य, स्थावर, स्त्री-पुरुष, वर्ण-आश्रम, बन्धन-मुक्ति आदि सभी अनात्म वस्तुओं में भेद मानना ही 'अज्ञान' है॥१४॥

सुखमिति च सच्चिदानन्दस्वरूपं ज्ञात्वानन्दरूपा

या स्थितिः सैव सुखम् । ॥१५॥

सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परमात्मा के ज्ञान से जो आनन्दपूर्ण स्थिति बनती है, वही सुख है॥१५॥

दुःखमिति अनात्मरूपः विषयसङ्कल्प एव दुःखम् ।॥१६॥

अनात्म रूप (नश्वर) विषयों का सङ्कल्प (विचार) करना दुःख कहलाता है॥१६॥

स्वर्ग इति च सत्संसर्गः स्वर्गः ।
नरक इति च असत्संसारविषयजनसंसर्ग एव नरकः । ॥१७॥

सत् का (अनश्वर का) समागम (सत्पुरुषों का सत्संग) ही स्वर्ग है। असत् (नेश्वर) संसार के विषयों (में रचे-पचे लोगों) का संसर्ग ही नरक है॥१७॥

बन्ध इति च अनाद्यविद्यावासनया जातोऽहमि-
त्यादिसङ्कल्पो बन्धः । ॥१८॥

अनादि अविद्या की वासना (संस्कार) द्वारा उत्पन्न इस प्रकार का विचार कि 'मैं हूँ,' यही बन्धन है॥१८॥

पितृमातृसहोदरदारापत्यगृहारामक्षेत्रममता संसारावरणसङ्कल्पो बन्धः । ॥१९॥

माता-पिता, भ्राता, पुत्र, गृह, उद्यान तथा खेत आदि मेरे अपने हैं, यह सांसारिक विचार भी बन्धन ही हैं॥१९॥

कर्तृत्वाद्यहङ्कारसङ्कल्पो बन्धः । ॥२०॥

कर्तापन के अहंकार का संकल्प भी बन्धनरूप है॥२०॥

अणिमाद्यष्टैश्वर्याशासिद्धसङ्कल्पो बन्धः । ॥२१॥

अणिमा आदि (अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये अष्ट सिद्धियाँ अथवा ऐश्वर्य हैं) आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त करने का संकल्प भी बन्धन है॥२१॥

देवमनुष्याद्युपासनाकामसङ्कल्पो बन्धः । ॥२२॥

मनोकामना की पूर्ति के संकल्पपूर्वक की गई देवताओं और मनुष्यों की उपासना भी बन्धन रूप है॥२२॥

यमाद्यष्टाङ्गयोगसङ्कल्पो बन्धः । ॥२३॥

यम आदि (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) आठ अङ्गों वाले योग का संकल्प भी बन्धन ही है॥२३॥

वर्णाश्रमधर्मकर्मसङ्कल्पो बन्धः ।॥२४॥

वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) धर्म-कर्म के संकल्प भी बन्धन स्वरूप हैं॥२४॥

आज्ञाभयसंशयात्मगुणसङ्कल्पो बन्धः । ॥२५॥

आज्ञा, भय, संशय आदि आत्म-गुणों के संकल्प भी बन्धन हैं॥२५॥

यागव्रततपोदानविधिविधानज्ञानसम्भवो बन्धः । ॥२६॥

यज्ञ, व्रत, तप और दान के विधि-विधान तथा ज्ञान के संकल्प भी बन्धन हैं॥२६॥

केवलमोक्षा-पेक्षासङ्कल्पो बन्धः । ॥२७॥

मोक्ष प्राप्ति का विचार करना भी बन्धन रूप है॥२७॥

सङ्कल्पमात्रसंभवो बन्धः ।॥२८॥

संकल्प मात्र से जो कुछ सम्भव है, वह सभी बन्धन स्वरूप है॥२८॥

मोक्ष इति च
नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारसुखदुःखविषयसमस्तक्षेत्रममता बन्धक्षयो मोक्षः । ॥२९॥

जब नित्य और अनित्य वस्तुओं के विषय में विचार करने से नश्वर संसार के सुख-दुःखात्मक सभी विषयों से ममतारूपी बन्धन विनष्ट हो जाएँ, उस (स्थिति) को मोक्ष कहते हैं॥२९॥

उपास्य इति च सर्वशरीरस्थचैतन्यब्रह्मप्रापको गुरुरुपास्यः ।॥३०॥

समस्त शरीरों में स्थित, चैतन्य स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कराने वाला गुरु ही उपास्य (पास बैठने योग्य) है॥३०॥

शिष्य इति च विद्याध्वस्तप्रपञ्चावगाहितज्ञानावशिष्टं ब्रह्मैव शिष्यः ।॥३१॥

जिसके हृदय में विद्या द्वारा नष्ट हुए जगत् के अवगाहन से उत्पन्न ब्रह्म रूप ज्ञान शेष रहे, वही शिष्य है॥३१॥

विद्वानिति च सर्वान्तरस्थस्वसंविद्रूपविद्विद्वान् । ॥३२॥

सबके अन्तर में स्थित आत्म तत्त्व के विज्ञानमय स्वरूप को जानने वाला ही विद्वान् है॥३२॥

मूढ इति च कर्तृत्वाद्यहङ्कारभावारूढो मूढः । ॥३३॥

कर्तापन आदि के भाव में आरूढ़ व्यक्ति ही मूढ़ (मूर्ख) है॥३३॥

आसुरमिति च ब्रह्मविष्ण्वीशानेन्द्रादीनामैश्वर्यकामनया
निरशनजपाग्निहोत्रादिष्वन्तरात्मानं सन्तापयति
चात्युग्ररागद्वेषविहिंसा दम्भाद्यपेक्षितं तप आसुरम् । ॥३४॥

जो ब्रह्मा, विष्णु, ईशान और इन्द्र आदि देवों के ऐश्वर्य की कामनापूर्वक व्रत, जप, यज्ञ आदि में अन्तरात्मा को तपाये तथा अत्युग्र राग-द्वेष, हिंसा, दम्भ आदि दुर्गुणों से युक्त होकर जो तप करे, वह आसुरी तप कहलाता है॥३४॥

तप इति च ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्यपरोक्षज्ञानाग्निना
ब्रह्माद्यैश्वर्याशासिद्धसङ्कल्पबीजसन्तापं तपः । ॥३५॥

ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान से ब्रह्मा आदि देवों के ऐश्वर्य प्राप्त करने के सङ्कल्प-बीज को संतप्त करना (जला डालना) ही (यथार्थ) तप कहा जाता है॥३५॥

परमं पदमिति च प्राणेन्द्रियाद्यन्तःकरणगुणादेः परतरं सच्चिदानन्दमयं नित्यमुक्तब्रह्मस्थानं परमं पदम् । ॥३६॥

प्राण, इन्द्रिय, अन्त:करण आदि से भिन्न सच्चिदानन्द स्वरूप और नित्य मुक्त ब्रह्म का स्थान परमपद कहलाता है॥३६॥

ग्राह्यमिति च देशकालवस्तुपरिच्छेदराहित्यचिन्मात्रस्वरूपं ग्राह्यम् ।॥३७॥

देश, काल, वस्तु की मर्यादा से परे चिन्मात्र स्वरूप (जो कुछ है, वह) ही ग्रहण करने योग्य (ग्राह्य) है॥३७॥

अग्राह्यमिति च स्वस्वरूपव्यतिरिक्तमायामयबुद्धीन्द्रियगोचरजगत्सत्यत्वचिन्तनमग्राह्यम् । ॥३८॥

निजस्वरूप से परे, माया द्वारा कल्पित और बुद्धि तथा इन्द्रियगम्य जगत् की सत्यता का चिन्तन अग्राह्य है॥३८॥

संन्यासीति च सर्वधर्मान्परित्यज्य निर्ममो निरहङ्कारो भूत्वा ब्रह्मेष्टं शरणमुपगम्य तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिमहावाक्यार्थानुभवज्ञानाद्ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पसमाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स संन्यासी स मुक्तः स पूज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः स ब्राह्मण इति । ॥३९॥

जो समस्त धर्मों (कर्मों) में ममता एवं अहंकार का परित्याग करके इष्ट (ब्रह्म) की शरण में जाकर और 'तू वही है', 'मैं ब्रह्म हूँ', 'जो कुछ भी यह है, सब कुछ निश्चित ही ब्रह्म है', 'ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है', आदि इन महावाक्यों द्वारा 'मैं ब्रह्म हूँ', इस प्रकार का निश्चय करके निर्विकल्प समाधि में लीन रहकर परम स्वतन्त्र और यतिस्वरूप होता है, वह पुरुष 'संन्यासी' कहलाता है, वही मुक्त, पूज्य, योगी, परमहंस, अवधूत और ब्राह्मण होता है॥३९॥

इदं निरालम्बोपनिषदं योऽधीते गुर्वनुग्रहतः सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते पुनर्नाभिजायते पुनर्नाभिजायत इत्युपनिषत् ॥॥४०॥

इस निरालम्ब उपनिषद् का जो (साधक) गहन अध्ययन करता है, गुरु कृपा से वह अग्निपूत (अग्नि की तरह पवित्र) और वायुपूत (वायु की तरह पावन) हो जाता है, फिर उसका पुनरावर्तन नहीं होता, वह पुनः-पुनः जगत् में जन्म नहीं लेता। निरालम्ब उपनिषद् का यही रहस्य है॥४०॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति निरालम्बोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ निरालम्ब उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥